International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(4): 210-213

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(4): 210-213
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 03-05-2017
Accepted: 25-06-2017

डॉ0 उमाशंकर त्रिपाठी
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
संस्कृत विभाग वीरभूमि राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय–महोबा (उ0प्र0)

डॉ0 ओमकार मिश्र
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
संस्कृत विभाग वीरभूमि अतर्रा पी0जी0 कालेज अतर्रा–बाँदा (उ0प्र0)

डॉ0 रीता सिंह
संस्कृत विभाग वीरभूमि अतर्रा पी0जी0 कालेज अतर्रा–बाँदा (उ0प्र0)

Correspondence
डॉ0 उमाशंकर त्रिपाठी
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
संस्कृत विभाग वीरभूमि राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय–महोबा (उ0प्र0)

बाणभट्ट विवेचित पशु–पक्षी, एक संक्षिप्त विवेचन

डॉ0 उमाशंकर त्रिपाठी, डॉ0 ओमकार मिश्र, डॉ0 रीता सिंह

''लोमवल्लाङ्गूलवान् पशुः'' अर्थात् लोभ से युक्त पूँछ वाला पशु होता है – भारतीय चिन्तन परम्परा में पशु का यह लक्षण विवेचित है। जो धर्म–अधर्म, भक्ष्य– अभक्ष्य, गम्य–अगम्य आदि का जो भेद न करे वह पशु होता है। भारतीय चिन्तन परम्परा में धर्म से हीन मनुष्य भी पशु ही होते हैं –

आहारनिद्राभयमैथुनञ्च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्।
धर्मोहितेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।।
साहित्यसगीतकलाविहीनः साक्षात्पशुःपुच्छविषाणहीनः।
तृणं न खादन्नपि जीवमानस्तद्भागधेयं परमं पशूनाम्।।

मानव जीवन में पशुओं का पग–पग पर उपयोग है। पर्यावरण संरक्षण में भी पशुओं का महान् योगदान है। हमारे धर्मग्रन्थों में पशुओं के अनेक भेद बतलाये गये हैं। भागवत में पशुओं के अट्ठाइस भेद इस प्रकार बतलाये गये हैं –

तिरश्चामष्टमः सर्गः सोकष्टाविंशद्विधो मतः,
अविदो भूरितमसो घ्राणज्ञा ह्रद्यवेसिः।।
गोरजो महिषः कृष्णः सूकरो गवयो रुरुः।
द्विशफाः पशवश्चेमे अविरुष्ट्रश्च सत्तम्।।
खरोऽश्वोऽश्वतरो गौरः शरभश्चमरी तथा।
एते चैकशफाः सत्तः शृणु पञ्चनखान् पशून।।
श्वो सृयात्नो वृको व्याघ्रो मार्जारः शशशल्लकौ।
सिंहः कपिर्गजः कूर्मो गोधा च मकरादयः।
कङ्कगृध्रवत्श्येन मासभललूक बर्हिणः।
हंससारसचक्रास्वकोलूकादयः खगाः।। [1]

महाकवि बाण द्वारा वर्णित पशु अनेक प्रकार के हैं, स्थानाभाव के कारण सभी का वर्णन उचित नहीं होगा अतः अज, अश्व, अश्वतर, उष्ट्र, कपि पर ही प्रस्तुत निबन्ध केन्द्रित होगा।

अज

यह पशु छागः, छगलकः, तमः, शम, लघुकायः क्रमसदः, पर्णभोजनः, लम्बकर्णः, मेनादः, बुक्कः, अल्पायुः, शिवाप्रियः आदि नामों से अभिहित किया जाता है। हेमचन्द्र ने अपने शब्दानुशासन में इस विषय में इस प्रकार कहा है–

''अजस्छागे हरे विष्णौरघुजेवेधसि स्मरे''

अज वर्ण आकार, प्रकार, स्थान आदि के भेद से अनेक प्रकार का होता है। पर्वतीय स्थानों में इनकी अधिक संख्या पायी जाती है। अजा, छोटे स्तन वाली, छोटी काया तथा कम दूध देने वाली होती है। यह पत्ते, घास तथा अन्न का भक्षण करती है। इसका प्रजनन छः महीने में होता है। इसका दूध अति पौष्टिक, पाचक तथा स्वास्थ्यवर्धक होता है। इसका दुग्ध कई रोगों में औषधि का कार्य करता है। इसका दूध, दही, धृत, मूत्र राजयक्षमा में परमोपयोगी होते हैं। कृष्ण यजुर्वेद में अज का यज्ञवलि में उपयोग मिलता है। [2]

महाकवि बाणभट्ट ने कई स्थलों पर छाग (बकरा) का वर्णन किया है, जैसे सूतिकागृह में पुष्पादि से अलंकृत बकरे की बलि का विधान है –

''विविधगन्धकुसुममालालटतजरच्छागम्''

कादम्बरी पृष्ठ 261 इसी तरह चंडिका की बलि के लिए भी छाग का वर्णन मिलता है–

''प्रबलकूर्चधरैश्छागैरपि धृतवृतैरिव'' [3]

अश्व

महाकवि बाणभट्ट ने अश्व का प्रभूत वर्णन किया है [4]।

''अश्नुते मार्गं व्याप्नोति'' इति अश्वः'' – अर्थात् जो मार्ग को अभिव्याप्त कर अवस्थित हो वह अश्व होता है। अश्व के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग संस्कृत में होता है जैसे–घोट, घोटक, तुरङ्ग, वीति, वाजी, वाह, गन्धर्व, सैन्धव, हय, अर्वा आदि।

पशुओं में श्रेष्ठ अश्व प्रबल, सुन्दर, परमोपयोगी, स्वामिभक्त ग्राम्य व जंगली पशु है। यह जाति, वर्ण, आकार, स्थान आदि भेद से अनेक प्रकार का होता है। वह एक खुर वाला पशु है। चना इसका सबसे रुचिकर भोजन है। इसकी आयु लगभग पच्चीस वर्ष होती है। यह शत्रु एवं मित्र का सूक्ष्मरूपेण पहचान कर लेता है। प्राचीन काल में घोड़े को धन के रूप में (वाजिधन) माना जाता था। प्राचीन काल में राजाओं के पास घुड़सवारों की भी सेना होती थी। अरब देशीय अश्व सर्वोत्तम माना जाता है। अश्व बहुत कम समय के लिए खड़े–खड़े ही सोता है। यह पृथ्वी पर लोट–पोट कर अपना थकान दूर करता है।

महाराज हर्षवर्धन के स्कन्धावार में अनेक प्रकार के अश्व थे जो अति दर्शनीय थे –

''अथ वनायुजकाम्बोजारहजसिन्धुदेशजपारसीकदेशादिस४जाततुरग्माः सुशोभन्ते स्म। वनायुजैः काम्बोजैः, आरट्टजैः, सिन्धुदेशीयः, पारसीकैश्च, श्यामैश्च, तित्तिरिकल्माषैश्च श्वेतैश्च'' इत्यादि।

चन्द्रापीड को गुरुगृह में अन्य विद्याओं के साथ ही साथ अश्व विद्या का भी ज्ञान दिया गया था– ''तुरङ्गवयोज्ञाने'' [5]। राजकुमार चन्द्रापीड का इन्द्रायुध नामक अश्व तीनों लोकों में एक मात्र रत्न के समान था– ''त्रिभुवनैकरत्नानिलगरुसमजवइन्द्रायुधनामा तुरङ्गमः प्रेषितो महाराजेन द्वारि तिष्ठति'' [6]

कादम्बरी में अनेक स्थलों पर अश्व के सम्बन्ध में विस्तार से चर्चा हुई है। हर्षचरित में भी अश्व के विषय में अनेक स्थलों में सन्दर्भित किया गया है। हर्षचरित में अश्व या उसके पर्यायवाची शब्द अरसठ बार प्रयुक्त किये गये हैं, जिनमें कुछ इस प्रकार उद्घृत किये जा रहे हैं – ''उद्दामप्रसृतेन्द्रियवाजिसमुत्थापितं रजः'' [7]

''तुरङ्गमसमुत्थापितं रजो दृष्टिं कलुषयति''
''तुरङ्गमुखखनखणापितखरखलीनक्षतक्षरत्क्षतजेनैव'' [8]
''गम्भीरतारं तुरङ्गहोषितOादम् अशृणोत्'' [9]
''सनाथमश्ववृन्दंददर्श'' [10]
''नखमयूखजालनैरश्वमण्डलनचामरमालामिव रचयन्तम्'' [11]
''तुरगेश्यभ्यश्चावतीर्ण समस्तेन सामन्त लोकेन पश्चादाकृ व्यमाणअश्वीयेमानुगम्यमानः'' [12]

चण्डीशतक में अश्व या हरि शब्द का प्रयोग अनेकधा किये गये हैं – ''ग्रस्ताश्वः शष्पलोभारिक हरितहरे....।'' इस कथन में सूर्य के अश्वों का हरित वर्ण प्रतिध्वनित होता है।

''ग्राहस्व व्योममार्गं गतमहिषभयैर्विध्नविश्रब्धमश्वैः'' [13]

इससे अतिरिक्त अन्य अश्व सम्बन्धित प्रयुक्त शब्द इस प्रकार प्रदर्शित किये जा सकते हैं –

''महिषतो भीरवश्यं हरीणाम्''

तथा

''गवलस्तुरङ्गमं हन्ति''
''पङ्गुर्नेता हरीणामसमहरियुतः स्यन्दनचक्रैचक्रो भावोः सामम्युपेतः
कृतः'' [14]

अश्वतर [15]

यह पशु आकार–प्रकार में अश्व के ही समान होता है। इसे बोल–चाल की भाषा में खच्चर कहते हैं। अश्वतर अश्व की अपेक्षा विशालकाय होता है। घोड़ी एवं गधे के संयोग से यह उत्पन्न होता है। मादा अश्वतर में प्रजनन शक्ति नहीं होती है। यह समस्त विश्व में पाया जाता है। महाकवि बाणभट्ट ने हर्षचरित में तीन स्थानों में अश्वतर शब्द का प्रयोग किया है जैसे–

''महाप्रमाणाश्वतराधिरुढयानुगम्यमाना'' [16]
''कुवलयाश्वो भुजग्लोक परिग्रहाद् अश्वतरकन्यकामपि न जहौ'' [17]
''त्रस्नुवेसनविसंवादसीदत् दाक्षिणात्यसादिनि'' [18]
उष्ट्र [19]

''उष्'' धातु से ''उषखनिभ्यां कित्'' इस औणादिक सूत्र से ष्ट्रन् प्रत्यय तथा कित् होकर यह शब्द निष्पन्न होता है। संस्कृत साहित्य में उष्ट्र के लिए अनेक पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया गया है। जैसे–क्रमेलक, मयः, महाङ्गः, दीर्घगतिः, बली, करमः, दासेरकः, घूसरः, लम्बोष्ठः, खणः, महाजङ्घः, जवी, जाङ्घिकः, खलकः, महाग्रीवः, महानादः, महाध्वगः, महापृष्ठः, बलिष्ठः, कण्ठकाशनः, मौलिः, बङ्गलरः, अध्वगः, मरुह्यिः, तक्रगपिः, वासन्तः, कुलनाशः, कुशनामा, मरुप्रियः, द्विककुत, दुर्गलङ्घनः, भूतघ्नः, दासेरः, दीर्घग्रीवः, केलिकर्णः, दीर्घसङ्घः, ग्रीवी, धूमकः, शरभ इत्यादि यह बालू बाहुल्य क्षेत्र में चलने वाला यह पशु है। चतुष्पादों वाले इस पशु की ग्रीवा लम्बी तथा घुमावदार तथा पीठ लम्बी होती है। यह प्रचुर मात्रा में जल पीता है तथा बिना जल पिये भी अनेक दिनों तक रह सकता है। यह काटों से युक्त पत्तों को भी खा जाता है। इसकी उम्र 25 वर्ष की मानी जाती है। प्राचीन काल में यानों में इसका प्रयोग किया जाता था–

''नाधीयिताश्वमारुढो न रथं न च हस्तिनम्।
न नावं न खरं नौष्ट्रं नेरिणस्थो न यानगः।।
उष्ट्रयानं समारुह्य खरयानन्तु कामतः।।'' [20]

प्राचीन काल में युद्धों में उटों का प्रयोग देखा जाता था। आज के प्रदूषित वातावरण में वाहन में उटों का प्रयोग किया जाय तो पेट्रोल, डीजल का प्रयोग कम होगा, जिससे पर्यावरण संरक्षित रहेगा।

कपि

बाणभट्ट के ग्रन्थों में कपि अर्थ वाले शब्दों का प्रयोग अनेक स्थानों में उपलब्ध होता है जैसे–बानर नाम से कादम्बरी पृष्ठ 42 में शाखामृग नाम से कामदम्बरी पृष्ठ 43, 58 एवं 86 में पुनः वानर नाम से कादम्बरी पृष्ठ 90, 100, 196, 200, 248, 272, 275, 284 व 462 में। हर्षचरित में पृष्ठ 22, 88, 116, 118, 139, 305, 314, 348, 376 तथा 379 में कपि अर्थ वाले शब्दों के प्रयोग हुए हैं।

''अतिचपलकपिकुलकम्पितकक्लोलच्युतपल्लवफलशकलैः''[21]

इससे यह ज्ञात होता है कि विन्ध्याटवी में कक्कोल वृक्ष तथा वानरों का बाहुल्य था।

''क्वचित् पार्थरथपताकेव कप्याक्रान्ता'' [22]

इस वाक्यांश से यह सूचित होता है कि अर्जुन के रथ पर कपि (हनुमान) द्वारा आक्रान्त पताका के समान कपियों से आक्रानत विन्ध्याटवी शोभायमान हो रही थी। स्थानाभाव के कारण कुछ उद्धरण अति संक्षिप्त रूप में इस प्रकार दिये जा सकते हैं –

''पुनरिव कपीश्वरे वनमभिपतति बालातपे'' [23]
''कपीनां श्रीफलाभिलाषः'' –न मुनीनाम्'' [24]
''इदमिह कपिकुलमपगत–चापलमुपनयति मुनिकुमारकेभ्यः स्नातेभ्यः फलानि'' [25]
''कुब्जवामनकिरातकरतलाच्छिन्नानि भूषणानि विकिरारिः कपिभिराकुलीभूतेन'' [26]
''तरणतरकुपितकपिलयनलोहितेलोकचक्षुषि भगवति'' [27]
''कपि कपोलकपिलैः कपिलायमानम्'' [28]
''कपयोऽपि चकिता इव चपलायन्ते'' [29]

पक्षी

प्रकृति में निर्मित पक्षियों का शरीर इस प्रकार है कि प्रकृति के सभी विघ्नों को सहन कर लेता है। प्रकृति के वातावरण को यह आसानी से सहन कर लेता है। पक्ष (पंखे) के कारण इसे पक्षी कहते हैं –

''पक्षौ विद्येते यस्य सः पक्षीति''

प्राचीन काल में भारतवर्ष के घर–घर में शुकों तथा सारिकाओं को पाला जाता था, जो वैदिक मन्त्रों के ज्ञाता भी होते थे। विवाह, प्रेम, राजनीति, गुप्त रहस्य आदि के समाचार, शुक तथा हंसों के द्वारा पहुँचाये जाते थे। विपत्तिकाल में पक्षी अपने शत्रुओं के साथ युद्ध भी करते थे और पराक्रम भी दिखाते थे, जैसे–जटायु।

चटक [30]

चटक गृह के समीप वाटिकादि में निवास करते हैं। अपने अण्डों तथा शावकों के भय को देखकर क्रोध से कम्पित होकर वृक्ष की शाखाओं में चटक कूजते हैं। हर्षचरित में ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है कि प्रभातकाल में चटक पक्षियों के चहचहाने के कारण कन्दरा गुन्जायमान हो जाती है। चटक अपने शिशुओं को उड़ने का प्रशिक्षण देते हैं। अतः पक्षियों का भी अपने शिशुओं के प्रति वात्सल्य भाव परिलक्षित होता है। पक्षी भी अपना तथा पराये का ज्ञान रखते हैं।

केवल हर्षचरित में ही नहीं बल्कि कादम्बरी में भी बाणभट्ट ने चटक का वर्णन किया है –

''फलभरनिकरपीडितदाडिमनीडप्रसूतकलविङ्कैः'' [31]

क्पोत [32]

यह आकार प्रकार तथा स्थान भेद के कारण अनेक प्रकार का होता है। लोक व्यवहार में इसके अनेक नाम हैं जैसे – पारावत, छेय, रक्तलोचन, चित्रकण्ठ, कोकदेव, घूसर, घूमलोचन, दहन, ग्रहनाशन आदि।

हिन्दी भाषा में इसे परेवा तथा उर्दू भाषा में कबूतर कहते हैं। यह वृक्ष के खोखलों तथा ऐसे घरों में रहना ज्यादा पसन्द करता है जिसमें मनुष्यों का रहन–सहन कम हो। यह पक्षी अत्यन्त कामी होता है। यह अक्सर अपनी मादा के साथ रहता है। यह ग्राम्य तथा अरण्य दोनों में निवास करता है। प्राचीनकाल में इसके गले में पत्र बाधकर सुदूर स्थानों में सम्प्रेषण का कार्य किया जाता था। कपोतों के युद्धों से अपना मनोरंजन भी करते थे। कपोत का माँस मधुर, शीत, रक्तवात् तथा पित्तविनाशक होता है।

काक [33]

''काकयतेशब्दायते इति काकः''– अर्थात् अपनी कर्कश ध्वनि के कारण यह काक कहलाता है। यह करट, करिष्ट, बलिपुष्ट, ध्वङ्क्षाक्ष, आत्मघोष, बल्किभुक्, वायस, मौकुलि, काकोल, एकदृष्टी दात्यूह, द्रोणकाकः, कालकण्ठः, पिशुन, खटखादक, द्विक, काग, काण, निर्मितकृत कौशिकारि, चिरायु, मुखर, महालौल, चिर४जीवी, चंचल नागवीरक, गाढमौथुन, दुष्टक, श्रावक इत्यादि नामों के द्वारा अभिहित किया जाता है। ये कई रंग के होते हैं जैसे–पूर्णकाला, कृष्ण घूसर, श्वेत आदि। यह कोकिल के आकार प्रकार का होता है। इसकी आँख गोल आकार की होती है। इसकी एक ही आँख गोलाकार घूमती है। यह अत्यन्त चपल डरपोक तथा दीर्घायु होता है। स्वभावतः यह बड़ा घिनौना पक्षी होता है। यह अन्न, मांस तथा कीट आदि का भक्षण करता है। यह वर्षाकाल के आरम्भ में वृक्षों पर घोसला बनाकर रहता है। प्रायः इसी समय इसकी मादा अण्डों का प्रजनन करती है। कोयल अपने अण्डों को लाकर कौवों के अण्डों में रख देती है। जब मादा काक कोयल के बच्चों का भरण–पोषण करते हुए बड़े होने पर उसकी ध्वनि को सुनती है तब कोयल के बच्चे को बलात दूर कर देती है। काक समस्त संसार में पाया जाता है। अशुद्धता के कारण काक के मांस का कोई भक्षण नहीं करता।

भारत में प्रतिवर्ष श्राद्ध पक्ष में काकों को बलि प्रदान की जाती है।

''आकुलाकुलकाकपक्षधारिणा
कनकशलाकानिर्मितमत्यन्तर्गतशुकप्रभाश यामापमानं
मरकतमणिमिवपञ्जरमुदवहताचाण्डालदारकेणानुगम्मानाम्'' [34]

इससे ध्वनित होता है कि प्राचीन काल में चाण्डाल लोग काक पक्ष को शिरोभूषण के रूप में धारण करते थे। जंगलों में रहने वाले भील जाति के लोग मारे गये काकों के पंखों को बेचने के लिए संगृहित करते थे। सन्तान की प्राप्ति के लिए प्राचीन काल में लोग चाँदी के पात्रों में दधिओदन भरकर कौवों को खिलाते थे।

कोकिल [35]

यह कृष्णवर्ण तथा अत्यन्त मधुर स्वर वाला पक्षी है। कोकिल का कूजन अत्यन्त प्रिय होता है। इसकी ध्वनि संगीत शास्त्रानुसार सप्तम स्वर में होती है। वनप्रिय, परभृत, पिक, काकपरिपुष्ट, ताम्राक्ष, कलकण्ठ, गन्धर्व, कुहुखः, मदनपाठक इत्यादि नामों से इसे अभिहित किया जाता है। यह कृष्ण वर्ण तथा काल के समान आकृति वाला पक्षी है। यह अन्न, माँस, कीट, पतंग आदि खाता है। यह काक से भी ज्यादा प्रवीण होता है, इसीलिए अपने अण्डों का कौवों से पालन करवाता है। कोकिल के कूक के सन्दर्भ में महर्षि बाल्मिकी का कथन इस प्रकार है–

''भास्करोदय कालोऽयं गता भगवती निशा।
असौ सु कृष्णा विहगः कोकिलास्तात् कूजति।।''

श्रीमद्भागवत में भी इस प्रकार कहा गया है–

''अलिललिद्युतिं रविसुतावनकौकिलकम्।
ननु कलयाभितं सखि सदा ह्रदिनन्दसुतम्।।''

कोकिल के सन्दर्भ में कादम्बरी तथा हर्षचरित के एकाध उदाहरण इस प्रकार दिया जा सकता है–

''क्वचिन्मतेवकोकिलकुल प्रलापिनी''[36]
''पुष्प साधारणे काले पिकः कूजति प४चमिति''[37]

संदर्भ

1. श्रीमद्भागवत् – 3/111–20–24
2. तैत्तिरीय संहिता – 5/5/11/22–24
3. कादम्बरी पृ0 459
4. कादम्बरी पृष्ठ 1, 3, 5–7, 10, 11, 19, 25, 93, 123, 134, 163, 167, 168, 171, 176, 177, 178, 172, 173, 174, 171, 180, 181, 188, 193, 207, 208, 210, 211, 213, 214, 216, 217, 218, 225, 240, 243, 245, 246, 247, 249, 252, 257, 259, 286, 449, 506, 507, 533, 544, 545, 549, 581, 586, 602, 604, 622, 632, 633, हर्षचरित – 36, 37, 44, 47, 50, 53, 84, 88, 94, 122, 134, 136, 139, 140, 149, 151, 171, 181, 188, 191, 210, 214, 221, 222, 224, 238, 255, 256, 287, 306, 312, 315, 316, 318, 322–23, 330, 348, 357, 358–49, 378, चण्डीशतक–5, 9, 16
5. कादम्बरी पृष्ठ 168
6. कादम्बरी पृष्ठ 301
7. हर्षचरित पृष्ठ 19
8. हर्षचरित 28 पृष्ठ
9. हर्षचरित पृष्ठ 32
10. हर्षचरित पृष्ठ 31
11. हर्षचरित पृष्ठ 33
12. हर्षचरित पृष्ठ 392
13. चण्डीशतक पृष्ठ 5
14. चण्डीशतक पृष्ठ 45
15. हर्षचरित पृष्ठ 129
16. हर्षचरित पृष्ठ 50
17. हर्षचरित पृष्ठ 129
18. हर्षचरित पृष्ठ 129
19. कादम्बरी पृष्ठ 247, हर्षचरित पृष्ठ 43, 88, 138
20. मनुस्मृति 4/129, 11/29
21. कादम्बरी पृष्ठ 39
22. कादम्बरी पृष्ठ 43
23. कादम्बरी पृष्ठ 100
24. कादम्बरी पृष्ठ 196
25. कादम्बरी पृष्ठ 100
26. कादम्बरी पृष्ठ 196
27. हर्षचरित पृष्ठ 22
28. हर्षचरित पृष्ठ 88
29. हर्षचरित पृष्ठ 116
30. हर्षचरित पृष्ठ 117, 254, 327, 374, 375, कादम्बरी पृष्ठ 272
31. कादम्बरी पृष्ठ 272
32. कादम्बरी पृष्ठ 46, 56, 104, 133, 146, 196, 21, 272 273, 274, 518 हर्षचरित पृष्ठ 71, 214, 305, 337, 379
33. कादम्बरी पृष्ठ 21, 67, 174, 242, 285, 285, 307, 349, 395, 459 हर्षचरित पृष्ठ 84
34. कादम्बरी पृष्ठ 145
35. कादम्बरी पृष्ठ 37, 42, 84, 89, 194, 272, 297, 298, 325, 328, 369, 383, 385, 516, 701, हर्षचरित पृष्ठ 4, 193, 285, 354, 360, 376
36. कादम्बरी पृष्ठ 37
37. हर्षचरित पृष्ठ 328
38. कादम्बरी – व्याख्याकार श्री निवास शास्त्री, डा0 महेश चन्द्र भारतीय, रतिराम शास्त्री, साहित्य भण्डार मेरठ – 2004
39. चण्डीशतक – व्याख्याकार श्री विश्वनाथ पाण्डेय – चौखम्भा विद्याभवन सुरभारती प्रकाशन – 2012
40. मनुस्मृति – (द्वितीय संस्करण) – गोपाल शास्त्री मेने, चौखम्भा संस्कृत सीरिज आफिस वाराणसी
41. हर्षचरित – श्री विश्वनाथ पाण्डेय – चौखम्भा विद्याभवन सुरभारती प्रकाशन 2012
42. श्रीमद्भागवत – व्याख्याकार – पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य अखण्ड ज्योति संस्था – मथुरा
43. श्रीमद्भागवत – महर्षि वेदव्यास – गीता प्रेस, गोरखपुर
44. श्रीमद्भागवत – श्री व्यासदेव – पंडित कन्हैया लाल उपाध्याय भागवत प्रकाशन कार्यालय 1901
45. तैत्तिरीय संहिता – सम्पादक – बेवर – बर्लिन 1899
46. तैत्तिरीय संहिता – अनन्त शास्त्री 1957
47. कादम्बरी – डा0 जयशंकर लाल त्रिपाठी – चौखम्भा कृष्णदास अकादमी 1998
48. कादम्बरी – आचार्य शेषराज रैगमी – चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन सम्वत 2036